एक शिकायत सबकी

विद्यासागर नौटियाल

सौला-रूपसा से

मैं पूछती हूँ, इस घर में मैं भी कोई हूँ या नहीं? वे अपनी माँ का पक्ष कितनी जल्दी लेते हैं, जैसे सब कसूर मेरा ही रहता हो! मैं यह नहीं कहती कि वे अपनी माँ को घर से बाहर निकाल दें, पर ऐसा भी तो नहीं होना चाहिए कि उन्हें कुछ कहा ही न जाए। अपनी सास के बारे में जब भी मैं कुछ कहती हूँ तो जवाब में ये कहते हैं, "जमाना बदल गया है। जितना मेरी माँ ने इस घर की बहू बनने के बाद सहन किया था, उतना तुम्हें नहीं सहना पड़ता है।" उस जमाने में इनकी माँ ने क्या कोई अकेले ही सब-कुछ सहन किया होगा? सभी बहुओं को तो वैसी ही जिन्दगी बितानी होती थी। उस वक्त की तो रीति ही वैसी थी। और इनकी माँ ने अपनी जवानी के दिनों में दुख झेला, इसका मतलब तो नहीं होता कि मैं भी इस उम्र में सुख न लूटूँ? उन्हें क्या याद नहीं है कि तब वह कैसे दिन काटती थीं? जिसने अपनी सास के व्यवहार से कष्ट उठायें हों, उसे तो अपने दिन इतनी जल्दी नहीं बिसारने चाहिए। उसको तो बहुओं से हमदर्दी होनी चाहिए।

और मैं कौन सा सुख लूटती हूँ, जिसे देखकर उन्हें डाह होती है? उन्हें मेरा इनसे बात करना भी खलने लगता है। एक जमाना था जब लोग सास-ससुर के सामने अपनी घरवाली से बात नहीं करते थे, पर जरा आज की बहुओं को तो देखों। आज शादी हुई और दूसरे ही दिन लाज-हया छोड़ देती हैं और मैं तो कोई नई-नवेली दुल्हन अब नहीं रही जो हर वक्त घूँघट काढ़े रहूँ? तीन साल से इस

घर में उमर काट रही हूँ। मेरी सास तो चाहती हैं कि मैं अपने इनसे कभी बात ही न करूँ, किसी दूसरे के सामने जबान ही न खोलूँ। ऐसा भी कहीं होता है भला।

सुबह उनकी नींद तब खुलती है जब मैं घर का आधा काम कर चुकती हूँ। दिन-भर एक पल को चैन नहीं मिलता। कभी घास के गट्ठर के नीचे उसाँसे भरती हूँ और कभी खेतों की मिट्टी में डूबी रहती हूँ। पानी बरसे, चाहे ओले पड़े, मेरे लिए खाली बैठना हराम होता है। जेठ की दुपहरिया में भी आराम करना किसे कहते हैं, यह मैंने कभी नहीं जाना। रात में जब सोने जाती हूँ, तो पूरब के तारे पश्चिम चले गए होते हैं। लेकिन मेरी सास का मन इतने पर भी नहीं भरता। उनकी शिकायत बनी रहती है कि आज की बहुओं से काम नहीं होता। उफ! बहुओं की जिन्दगी भी क्या जिन्दगी होती है!

मैं बिना नहाए रह जाऊँ तो ये मुझे देखकर नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं और खफा हो जाते हैं चेहरा ऐसा बना लेते हैं, जैसे दूसरी शादी कर लेंगे और मुझे त्याग देंगे। नहाने चली जाती हूँ तो सास सर धुनने लगती हैं, दिन-भर नहाना-धोना ही लगा रहता है। मैं अजब दुबिधा में रहती हूँ। किसकी मानूँ, किसकी न मानूँ? सास को जो चीजें पसन्द हैं ये उनसे नफरत करते है और इन्हें जो चीजें अच्छी लगती हैं उनसे मेरी सास की नाराजगी बढ़ती है किसी एक की गुलाम होती तो निभ जाती। मैं उसी के कहने पर चलती। पर मैं तो घर-भर की दासी बन गई हूँ। मुझे हुक्म देने वालों की इस घर में भरमार है और सब के हुक्म न्यारे ही होते हैं।

बाकी सब बात तो खैर मैं भूल सकती हूँ, एक मेरी सास मुझसे डाह क्यों करती हैं? वह मेरी सास हैं, कोई सौत तो नहीं हैं? मैं इनकी ओर कभी एक नजर देखकर मुस्करा देती हूँ तो वह जलती क्यों हैं? औरत आखिर औरत है, वह माँ हो चाहे कुछ और। और क्या कहकर मैं अपने मन को समझा सकती हूँ।

लच्छो-एक बुढ़िया से

जमाना कितनी जल्दी बदल जाता है। कभी सास का जमाना होता था अब बहुओं का जमाना आ गया है। मेरी किस्मत में हमेशा दूसरों के मातहत रहना लिखा है। जब तक मेरी सास जिन्दा थी, मैं उसके अधीन रही; अब बहू का जमाना आ गया है। उससे सेवा करवाने के बजाय मुझे उलटे उसी की तीमारदारी करनी पड़ती है।

लाज-हया नाम की तो कोई चीज रह ही नहीं गई है। हर किसी के सामने दाँत निकालती रहती है, खीं-खीं! बन्दरी की तरह नाचती फिरती है। कुछ दूसरों का भी तो लिहाज करना चाहिए। मेरा ब्याह हुआ था तो पाँच साल तक किसी के सामने इन्हें मुँह नहीं दिखाती थी। दो लड़कों की माँ बन गई फिर भी सास-ससुर के सामने जबान नहीं खोली। दिन-भर घूँघट काढ़े रहती थी। ससुर ने मरते दम तक मेरा मुँह कभी खुला नहीं देखा। रात सोने से पहले इनके कमरे में जाना कैसा होता है, यह मैंने कभी नहीं जाना। और यह महारानीजी दिनभर अपने कमरे में चक्कर लगाती रहती हैं। छिःछिः, दुनिया को न जाने क्या हो गया है!

काम करते-करते मेरी हड्डियाँ टूट जाती थीं। सास के सामने एक मिनट चुप नहीं बैठ सकती थी। सास जब तक जिन्दा रही, मैंने कभी अपने हाथ से कुछ निकालकर नहीं खाया। वह नाराज हो जाती थी, तो मुझे खाना नहीं मिलता था। सबको खिला-पिलाकर खुद भूखे पेट जाकर सो रहती थी। वह कहती थी, बहुओं के साथ सख्ती से बर्ताव न किया जाए तो वे बिगड़ जाती हैं।

मेरी सास मुझे कितनी गालियाँ देती थी! जनने वाले की इतिश्री करके रख देती थी। डाँट-फटकार तो खैर मामूली-सी बात थीं उसकी तो मै जैसे आदी हो गई थी। लेकिन हाय, मैं इसे कोई भली बात भी कह दूँ तो इसे जैसे आग लग जाती है। अब मेरा इतना भी हक नहीं रहा कि कुछ

समझा-बुझा सकूँ। अपने मन की रानी बन गई है, जो जी में आया तो काम करेगी, नहीं आया तो नहीं करेगी! मैं कौन होती हूँ काम बताने-वाली? मैं किस खेत की मूली हूँ!

दस-दस दिन बीत जाते थे पर मैं नहाती नहीं थी। हाथ-मुँह धोने के वक्त भी बड़ी मुश्किल से मिल पाता था। यहाँ नवाब की बेटी के हर रोज़ कपड़े बदलते है और दिन-भर साज-सिंगार चलता रहता है। घर की बहू को ऐसे सिंगार से क्या मतलब! इस तरह बन-ठन कर वह किसे छलने जाती है? हफ़्ते में तीन-तीन साबुन की टिकियाँ चाहिए उसे। कोठेवालियों की तरह बन-ठनकर नहीं रहेंगी तो क्या बिगड़ जाएगा! बहू का धर्म होता है नीचे देखकर चलना और मन की बात को मन-ही-मन पी जाना। पर अब ज़माना बदल गया है, धर्म-कर्म की अब परवाह किसे है!

वह तो खैर पराये घर से आयी है। परायी सन्तान को मैं क्या कह सकती हूँ, जब अपनी कोख से पैदा हुए लड़के के ये हाल हैं कि रात-दिन बीवी की गुलामी में लगा रहता है! अपनी माँ के कहने पर ये मुझे कितना पीटते थे! मेरे शरीर पर अभी तक निशान हैं इनकी मार के! राम-राम! उसके सामने तो आज मैं बहू को एक छोटी-सी भी बात कह दूँ तो वह ऐसा रूप धारण कर लेता है कि मेरी ज़बान नोचकर रख देगा!

उसका कोई दोष नहीं, दोष मेरी ही कोख का है। मेरी क़िस्मत में यही बदा था। पता नहीं किस पूर्वजन्म के पापों का फल भोग रही हूँ, जो इतना सब-कुछ देखना पड़ रहा है! मौत भी माँगे से नहीं मिलती। मैंने तो अब तक खुदखुशी कर ली होती, बस अपनी बेटी लाज्जो का मोह जिन्दा रखे है। उसकी सास बड़ी दुष्ट है। लाज्जो की ख़बर नहीं मिलती तो मुझे अनमना-सा लगने लगता है और चिन्ता बढ़ जाती है। अपनी डायन सास के साथ न जाने कैसे दिन काटती है मेरी लाज्जो!

रूपसा–अपनी सहेली से

सौला मज़े में है। मेरी सास को कोई उसी की जैसी बहू मिली होती तो उसे पता चलता। दिन-भर मुझे गालियाँ दे-देकर खुद आराम से बैठी रहती है। सौला भी तो है ही। उस दिन उसकी सास ने बस इतना कह दिया कि नहाना-धोना वक़्त पर ही होना चाहिए, तो सौला ने सारा घर सर पर उठा लिया था। उसके घर वाले ने खाना-पीना त्याग दिया और तब बुढ़िया को माफ़ी माँगनी पडी थी। दुनिया में चुप रहने वालों पर सभी अपनी हूकूमत जमाना चाहते हैं। मैं भी अपनी सास को एक-दो खरी-खोटी सुना दूँ तो वह दो दिन में सीधी हो जाए। मैं सोचती हूँ, छोड़ो; बुढ़िया को अब कितने दिन जिन्दा रहना है। क्यों मुँह लगा जाए। लेकिन बुढ़िया को कभी ऐसा ख्याल नहीं आता। हाथ-पाँव तो चलते नहीं, हाँ, जबान कैंची की तरह चलती रहती है।

ऐसे रिश्ते न जाने क्यों हो जाते हैं कि भली सास को बहू भली नहीं मिलती और भोली-भाली बहू की सास का स्वभाव एकदम उलटा होता है। हमारे यहाँ रिश्ता करने की रीत ही ग़लत है। नहीं तो क्या भलों को भले नहीं मिल सकते।

दम्मो–अपने उनसे

हमें सौला की सास के स्वभाव का पहले से पता होता तो उस घर में लड़की न देते। दुनिया में लड़कों की कमी नहीं थी। दामाद ऐसा मिला है जो अपनी माँ के खिलाफ एक बात नहीं सुन सकता। लड़की के जवानी के दिन हैं। एक रंगीन साड़ी पहन लेती है तो बुढ़िया के तन में आग लग जाती है। सौला के पति का दिमाग़ ठीक होता तो कहीं अलग जाकर दोनों अपनी गृहस्थी बसा लेते। बुढ़िया को पड़े रहने देते उसी दरबे में। लेकिन अब किया ही क्या जा सकता है! ग़लती होनी थी सो हो गई।

अभी कल ही उसकी ससुराल से चिट्ठी आयी है। कितना कष्ट है उसे वहाँ! गुलाब के फूल जैसी कोमल लड़की थी हमारी। सूखकर काँटा बन कई है। भरी

जवानी में बुढ़ापा आ गया है उस पर। जब तक यहाँ रही मैंने उसे कभी कोई काम नहीं करने दिया। हाथ मैला नही होने देती थी उसका। खूसट बुढ़िया उसे बैल की तरह काम पर जोते रहती है। तिस पर भी ऊपर से डाँट-फटकार करती रहती है, ताने मारती है। उसकी सास चाहती है कि सौला भी वैसे दिन गुजारे जैसे उसके दिन थे-गन्दगी से भरे हुए दिन, गिलाजत की जिन्दगी।

लड़की अपने मन में सोचती होगी, माँ-बाप ने गला काट दिया। बदन सिकुड़कर सूखा नींबू हो गया है चेहरे पर झुर्रियाँ उभर आई हैं। अभी एक भी सन्तान नहीं हुई, और अभी से ये हाल हैं।

अजो! तुम एक बार सौला की ससुराल हो आओ। उसे इतना तो ढाढ़स होगा कि माँ-बाप भूलें नहीं हैं। मौका लगे तो उस बुढ़िया को भी कुछ कहते आना। कहना, दूसरे की कोख से भी वैसी ही बेटी पैदा होती है जैसी अपनी कोख से।

परायी बेटी के सुख-दुख का किसे खयाल रहता है।

दया–अपने मन से

परायी बेटी के सुख-दुख का किसे ख्याल रहता है! जिसे रहती है अपने की चिन्ता रहती है। सौला की मेरी सास को कितनी चिन्ता है। अगर सौला की जगह मैं इनकी कोख से जन्मी होती तो क्या होता? मेरी ननद की जब ससुराल से चिट्ठी आती है तो उसे कई-कई बार लोगों से पढ़वाती हैं और उसकी याद करते ही इनकी आँखों पानी भर आता है। कितना प्रेम उमड़ता है इनकी आँखों में मेरी ननद सौला ने लिए। पर वह प्यार मेरी बारी न जाने कहाँ गायब हो जाता है! मुझे तो ऐसी जलती हुई आँखों से देखती हैं, जैसे भस्म ही कर डालेंगी। कभी एक दिन मुझे भी तो दुलार में कुछ कहा होता! इनकी बेटी गुलाब के फूल की तरह कोमल थी तो मैं भी तो कई कटहल का छिलका नहीं थी।

मैं यह नहीं कहती कि सौला को अपनी ससुराल में दुख नहीं झेलने पड़ते। बहू आखिर बहू है। उस बेचारी को बहुत-कुछ सहना पड़ता है। लेकिन सास भी सास ही होती है। नहीं तो अपनी बेटी का दुख देखकर उसकी माँ को मुझ पर भी तरस आया होता!

सौला कई बार यहाँ आयी और उसने यहाँ का जीवन देखा। पर जब वह यहाँ होती है तब अपनी ससुराल के दिन उसे याद नहीं रहते। नहीं तो क्या वह अपनी माँ को समझा नहीं सकती थी कि मेरे साथ ऐसा बुरा बर्ताव न किया करे। मैं भी तो एक बहू हूँ।

सौला ने अपनी माँ के नाम ससुराल से जो चिट्ठी भेजी है उसे अगर मैं अपनी माँ को भेज दूँ तो उसमें लिखी बातें क्या मेरे मन की बातें नहीं होंगी? जैसी सौला की सास वैसी मेरी सास।

लेकिन उस चिट्ठी को मैं अपने हस्ताक्षर करके अपनी माँ के नाम नहीं भेजूँगी, वरना मेरी भाभी उसे अपनी माँ के पास भेज देगी, मेरी जगह अपना नाम लिखकर। उसे भी तो मेरी माँ से शिकायत रहती है। हालाँकि मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि भाभी से मेरी माँ का जैसा व्यवहार दुनिया में कोई सास नहीं कर सकती। मेरी माँ का हृदय कितना कोमल है, इसे मैं की जान सकती हूँ। ऐसी माँ से भी नहीं मिल सकती।

पर मेरी भाभी को मेरी ऐसी अच्छी माँ से भी शिकायत रहती है। धन्य है!

विद्यासागर नौटियाल

जन्म 1933। कहानी उपन्यास की लगभग दस पुस्तकें प्रकाशित। मध्य प्रदेश साहित्य परिषद और पहल सम्मान से सम्मानित।